संपादकीय

अरपा तीरे

डॉ. देवेंद्र

स्वनिम का यह प्रवेशांक अब आपके सामने है।

अरसे से यह इच्छा थी कि हिन्दी विभाग से एक ऐसी पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया जाये समकालीन हिन्दी की सर्जनात्मक श्रेष्ठता को बरकरार रखते हुए वर्तमान समय में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य की केंद्रीय पत्रिका बन सके। आज हिन्दी में पत्रिकाओं की कोई कमी नहीं है। हंस, कथादेश, पाखी, शब्दिता, कथाक्रम, अकार और तद्भव के क्रम में सैकड़ों नाम हैं जो अव्यावसायिक स्वरूप में निहायत निजी प्रयासों और संसाधनों के बल पर निरंतर निकल रही हैं, तब एक बड़े और केंद्रीय विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग को क्यों नहीं इस बड़े दायित्व में सहभागिता करनी चाहिए ?

बीते समय में कभी बनारस और प्रयाग साहित्य के केंद्र हुआ करते थे; आज दिल्ली, भोपाल, लखनऊ और पटना हिन्दी साहित्य के नये केंद्र बन कर उभरे हैं। ऐसे में अरपा तीरे बसे अपने गुरु घासीदास विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की यह कोशिश होगी कि मुकम्मल रचनाशीलता का एक ऐसा समानांतर केंद्र विकसित किया जा सके जो भले ही राष्ट्र के भौगोलिक और राजनीतिक मानचित्र के हाशिये पर अवस्थित हो, लेकिन जिसका स्वर और स्वरूप राष्ट्रीय और अखिल भारतीय हो। इसलिए भी कि हिन्दी की पहली कहानी यहीं बिल्कुल हमारे पड़ोस के पेंड्रा में **छत्तीसगढ़ मित्र** के यशस्वी संपादक माधव राव सप्रे द्वारा लिखी गयी थी- **टोकरी भर मिट्टी**। छायावाद की पहली आलोचना मुकुटधर पांडेय ने यहीं से लिखा था। यहीं के **केंद्रीय जेल** में माखन लाल चतुर्वेदी ने **पुष्प की अभिलाषा** जैसी कविता लिखी। आज साहित्य में छत्तीसगढ़ का अर्थ है **मुक्तिबोध**, श्रीकांत वर्मा का **मगध**, विनोद कुमार शुक्ल की गद्य-भाषा का वैभव।

हिन्दी रचनात्मकता के मानचित्र पर छत्तीसगढ़ की अपरिहार्य उपस्थिति के बावजूद इस अंचल से किसी साहित्यिक पत्रिका का अभाव हमेशा अखरता रहा है। **यही वजह है 'स्वनिम' के होने का।**

जो काम विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों को करना चाहिए उसे दूसरे लोग ज्यादा शिद्दत से कर रहे हैं। हिन्दी के नाम पर सबसे ज्यादा खाने वाले हम प्रोफेसरगण स्वप्नविहीन मुर्दा नींद के खर्राटे ओढ़े पड़े हैं। यही कारण है कि आज हिन्दी विभागों में सर्जनात्मकता का गहरा अकाल और सन्नाटा पसरा हुआ है।

नौकरी के लिए प्रकाशन की अनिवार्य शर्तों ने रचनात्मकता के नाम पर हिन्दी विभागों को एक विशाल और बदबूदार कूड़ाघर बनाकर रख दिया है । इन पत्रिकाओं में आज तक एक भी ऐसा लेख नहीं छपा, जिसकी कोई अनुगूंज साहित्यिक गोष्ठियों में सुनाई दी हो । हम नहीं चाहेंगे कि **स्वनिम** उसी लंबी फेहरिस्त में एक नाम भर बन कर रह जाय । हम कत्तई ऐसा नहीं चाहेंगे कि ऐसे किसी आलेख को **स्वनिम** में प्रकाशित होने दें जिसमें सिर्फ उद्धरणों की निर्जीव उबांसी भरी हुई हों।

हमें अनगढ़ता की कोई चिंता नहीं, बशर्ते विश्लेषण में मौलिकता की ताजगी हो । साहित्य के वृहत्तर सरोकार और सौंदर्य दृष्टि जरूर हो । विचारों की अंत्याक्षरी से बचते हुए अनुभवों की आत्मीय साझेदारी हो । एक रचनात्मक विजन हो ।

अगर आप साहित्य के अध्यापक हैं तो किसी न किसी स्तर पर हमें आपसे मौलिकता और नवीनता की उम्मीद रहेगी ही । सिर्फ साहित्य ही नहीं, इतिहास और समाजशास्त्र की नवीनतम परिघटनाओं में हमारे भीतर का क्या कुछ जो अमूल्य था, वह खोता जा रहा है, इसकी गहरी चिंता अवश्य दिखाई दे । अगर आप किसी रचना का पाठ प्रस्तुत कर रहे हैं तो उसका कोई न कोई अंश ऐसा जरूर हो, जो हमें समृद्ध करे । जिसका स्वर विसंवादी न हो । विचारों का जनतंत्र हो। असहमति का साहस और सहमति का विवेक हो । मनुष्यता का उल्लसित गान और प्रकृति का मनोरम संगीत हो ।

हमारी कोशिश रहेगी कि गुरु घासीदास विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की यह पत्रिका सिर्फ हिन्दी साहित्य तक अपने को सीमित न रखे । मानविकी और सामाजिक विज्ञान के अलावा अन्य दूसरे अनुशासनों में जो कुछ महत्वपूर्ण लिखा और पढ़ा जा रहा है **स्वनिम** उन सबकी संवाहक बन सके ।

स्वनिम के इस प्रवेशांक को इस बार हम नमूने के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं । जब हम इसका दूसरा अंक प्रकाशित करेंगे तो इस विश्वास के साथ कि साहित्य की दुनिया में इसे नज़रअंदाज़ कर पाना किसी के लिए भी असम्भव हो ।

आगामी अंक के लिए लेखकों से अनुरोध रहेगा कि अपने लिखे से पूरी तरह संतुष्ट हो जाने के बाद ही प्रकाशन के लिए भेजें । गुणवत्ता और मौलिकता का जरूर ध्यान रखें । हम बेहद सम्मान के साथ आपको प्रकाशित करेंगे ।

हमारे विश्वविद्यालय का पिछवाड़ा ! खूब घने, कटीले पेड़ों और खंडहरों के बीच कोलतार की टूटी-फूटी पगडंडी से कभी-कभार कोई आदमी गुजरता दिखाई दे जाता । एक बहुत गहरे और अबूझ सन्नाटे की उदासी ओढ़े वहीं एक डाकघर है । उसके भीतर सुख-दुःख से भीगे अतीत की कितनी सारी कहानियां, कितनी सारी प्रेम कविताएं डाकघर के सामने लेटर बॉक्स में सिसकती रहतीं हैं । एक युग हो गया शायद ही इसका ताला कभी खोला गया हो । एक सजीव साहित्य !

मुझे लगा कि कवर पेज के लिए स्मृतियों के इस ध्वंस स्तूप से बेहतर कुछ न होगा । **स्वनिम** का यह अंक, जिसके प्रयासों से संभव हो रहा है, विभाग के हमारे सहयोगी मित्र असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ. अनीश कुमार ने एक दिन जाकर अपने मोबाइल के कैमरे में उस डाकघर के सन्नाटे को कैद कर लिया ।

और इसी कड़ी में हम मुगलकाल के आखिरी बादशाह के आंगन में जा पहुंचे जहां अलगनी पर अटके कुछ धूसर और मटमैले पन्नों पर हमारी संस्कृति के छंद फड़फड़ा रहे थे । इस वैभवशाली विरासत को दूसरे कवर पेज के लिए ।

और अंत में, **जिजीवियन !** यानी गुरु घासीदास विश्वविद्यालय के छात्रों का ट्रेडमार्क ! नयी कलम की बानगी ।